© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

न्याय प्रोक्त ईश्वर स्वरूप

शैलेश कुमार द्विवेदी
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

न्यायदर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम ने अपने ग्रन्थ 'न्यायसूत्र' में तात्त्विक एवं तार्किक सिद्धान्तों की विशद् व्याख्या की है। इसीलिये न्यायशास्त्र को 'तर्कशास्त्र' तथा 'आन्वीक्षिकी' भी कहा जाता है।[1] न्यायदर्शन के अन्तर्गत मुख्यतः प्रमाण सम्बन्धी, भौतिक जगत् सम्बन्धी, आत्मा और मोक्ष सम्बन्धी तथा ईश्वर सम्बन्धी विचार व्यक्त किये गये हैं।

महर्षि गौतम न्यायसूत्र में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं। वे ईश्वर की सिद्धि अनुमान प्रमाण से करते हैं। न्याय सूत्र के अनुसार–

'ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफल्य दर्शनात्।''[2]

अर्थात् 'पुरुष के कर्मफल का कारण ईश्वर है'। तात्पर्य यह है कि 'पुरुष जो 'उद्योग करता है उसका नियमपूर्वक फल नहीं पाता'। ''इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि पुरुषार्थ का फल पराधीन है और जिसके अधीन है वह ईश्वर है।''[3]

न्यायवार्तिककार के अनुसार ज्ञानादि ईश्वर के नित्य गुण हैं। इस नित्यता को उन्होंने अतिशय कहा है तथा ईश्वर की नित्यबुद्धि को ही क्रियाशक्ति, इच्छा और प्रयत्न का प्रतिनिधि मानते हैं। इसलिये ईश्वर में एकमात्र ज्ञान ही विशेष गुण है। इनके अनुसार धर्म की सत्ता भी ईश्वर में है। इस प्रकार उद्योतकर संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग और विभाग इन पाँच सामान्य गुणों के साथ एक विशेष गुण ज्ञान की सत्ता ईश्वर में मानते हैं।[4]

न्यायमंजरीकार जयन्तभट्ट ने ईश्वर में दस गुणों की सत्ता स्वीकार की है। उनके अनुसार ईश्वर में संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग ये सामान्य पाँच गुण और ज्ञान, सुख, इच्छा, प्रयत्न और धर्म पाँच विशेष गुण विद्यमान हैं।[5] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न ये आठ गुण ईश्वर में रहते हैं।[6] कन्दलीकार भी इन्ही आठ गुणों से युक्त ईश्वर को स्वीकार करते हैं।[7]

प्राच्य न्याय की परम्परा के साथ–साथ नव्य नैयायिक भी ईश्वर को स्वीकार करते हैं। आचार्य उदयन अपनी रचना न्यायकुसुमांजलि में विभिन्न युक्तियों के माध्यम से ईश्वर की सिद्धि करते हैं। उनके अनुसार–

कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययः श्रुतेः।

वाक्यात्, संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः।।[8]

अर्थात् (1) कार्यात् (2) आयोजनात् (3) धृति अर्थात् धारण करने (4) पद अर्थात् व्यवहार (5) प्रत्यय अर्थात् प्रामाण्य (6) श्रुति (7) वाक्य तथा (8) संख्या विशेष रूपी आठ हेतुओं के आधार पर अनुमान द्वारा ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। इनका एकैकशः विवेचन निम्न है–

कार्यात्– प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है। क्योंकि यह जगत् एक कार्य है अतः इसका कोई न कोई निमित्त कारण अवश्य होना चाहिये। जगत में सामंजस्य एवं समन्वय इसके चेतनकर्त्ता से आता है। अतः सर्वज्ञ चेतन ईश्वर इस जगत के निमित्त कारण एवं प्रयोजनकर्त्ता हैं। इस प्रकार वाह्य जगत के कारण के रूप में ईश्वर की सत्ता अनुमान प्रमाण से सिद्ध होती है।[9]

आयोजनात्–सृष्टि के आदि में दो परमाणुओं के संयोग द्वारा द्वयणुक को उत्पन्न करने वाला जो कर्म होता है उसका कर्त्ता मनुष्यादि नहीं हो सकता अतएव इस प्रयत्न का कर्त्ता जो चेतन है वही ईश्वर है।[10] क्योंकि परमाणुओं में स्वतः आद्य स्पन्दन नहीं हो सकता और जड़ होने से अदृष्ट भी स्वयं परमाणुओं में गति संचार नहीं कर सकता। अतः परमाणुओं में आद्य स्पन्दन का संचार करने के लिये तथा उन्हें द्वयणुकादि बनाने के कारण के रूप में चेतन ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है।

धृत्यादेः– ब्रह्माण्ड आदि किसी के द्वारा धारण किये होने से पतन को प्राप्त नहीं होते। यह पतन का प्रतिबन्धक जो प्रयत्न है यह किसी चेतन से अधिष्ठित है और वह चेतन ही ईश्वर है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आकाश में पक्षी द्वारा धारण किया गया तिनका इसलिये नहीं गिरता कि उसे चेतन पक्षी का प्रयत्न धारण किये हुए है। उसी प्रकार यह सम्पूर्ण ग्रहोपग्रहादि रूप ब्रह्माण्ड ईश्वर द्वारा धारण किये हुये होने के कारण गिरकर नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार प्रलयकाल में इस ब्रह्माण्ड का नाश स्वयमेव नहीं होता बल्कि उसका नाश किसी प्रत्यनवान् चेतन द्वारा ही किया जा सकता है और वह ईश्वर ही है। इस प्रकार सृष्टि के कर्त्ता–धर्ता–संहर्ता के रूप में ईश्वर की सत्ता सिद्ध है।

पदात्– पदों में अपने अर्थों को अभिव्यक्त करने की शक्ति ईश्वर से आती है। तात्पर्य यह है कि सृष्टि के आदि में 'इस पद से यह अर्थ बोद्धव्य है, इस प्रकर की शक्ति के कारण के रूप में ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है।[11] अर्थात् पद से पदार्थ के ग्रहण का व्यवहार भी ईश्वर का साधक प्रमाण है।

प्रत्ययतः– वेद ईश्वर द्वारा उच्चरित वचन हैं, अतः ईश्वर प्रमाण्यपूर्ण और असंदिग्ध है। अतः सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट ईश्वर की सत्ता वेद के वक्ता के रूप में भी सिद्ध होती है।

श्रुतेः– श्रुतियाँ भी ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन करती हैं अर्थात् वेदों में भी ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन है अतः ईश्वर की सत्ता है।[12]

वाक्यात्– वेद विधिनिषेधात्मक वाक्यों द्वारा कर्तव्याऽकर्तव्य का निरूपण करते हैं। ये ईश्वर वाक्य ही हैं। अतः ईश्वर नैतिक नियम के संस्थापक एवं संरक्षक हैं। इससे भी ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है।

संख्याविशेषात्–''न्यायवैशेषिक के अनुसार द्वयणुक का परिमाण उसके घटक दो अणुओं की पारिमाण्डल्य से उत्पन्न नहीं होता, अपितु दो अणुओं की संख्या से उत्पन्न होता है। संख्या का प्रत्यय चेतन द्रष्टा से सम्बद्ध है। सृष्टि के समय जीवात्मायें जड़ द्रव्य रूप में स्थित हैं एवं अदृष्ट, परमाणु, काल, दिक्, मन आदि सब जड़ हैं। अतः दो की संख्या के प्रत्यय के लिये चेतन ईश्वर की सत्ता आवश्यक है।''[13]

इस प्रकार वर्णित उपरोक्त आठ हेतुओं के साध्य के रूप में आचार्य उदयन ईश्वर को स्वीकार करते हैं।

न्यायदर्शन में ईश्वर विशिष्ट है। वह निराकार सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य, निर्विकार, दयालु, सच्चिदानन्द स्वरूप, जगत का रचयिता, पालक तथा संहारक है।[14] वह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के अणुओं तथा दिक्, काल, आकाश से जगत की सृष्टि इस प्रकार करता है कि प्रत्येक जीव को उसके अदृष्ट अथवा कर्मों के अनुसार देह और मुक्ति प्राप्त हो। ईश्वर इस जगत् का निमित्त कारण है। जिस प्रकार कोई बुद्धिमान पिता अपने अनेक पुत्रों को उनकी योग्यता प्रवृत्ति तथा रुचि के अनुसार उनके योग्य अलग–अलग कार्यों में लगता है उसी प्रकार ईश्वर प्रत्येक जीव को उसकी प्रवृत्ति के अनुसार नाना कार्यों में लगाता है। ईश्वर समस्त प्राणिमात्र का नैतिक शासक है। हमारे कर्मों के फलों का न्यायतः प्रदाता है तथा हमारे सुख दुखों का नियामक है।

सन्दर्भ सूची

1. सर्वदर्शन संग्रह–पृ0 386।
2. न्यायसूत्र–4.1.19।
3. न्यायभाष्य–4.1.19।
4. न्यायवार्तिक–4.1.21/पृ0 454
5. यथा च तन्मते संख्यापरिमाणपृथकत्वसंयोगविभागज्ञानसुखेच्छाधर्माश्चेति दश गुण ईश्वरस्य–न्यायमंजरी, पृ0 201।
6. संख्यादयः पंचबुद्धिरिच्छा प्रयोऽपि चेश्वरे–न्यायसिद्धान्तमुक्तावली।
7. न्यायकन्दली, पृ0 142।
8. न्यायकुसुमांजलि–5.1। (पंचम स्तबक, प्रथम कारिका)
9. कुसुमांजलिपरिमल–5.1।
10. आयोजनं कर्म.....(कुसुमांजलिपरिमल–5.1)
11. 'पदात्' पद्यतेऽनेनेति व्युत्पत्या 'पदं' व्यवहारः। (कुसुमांजलिपरिमल 5.1)
12. भारतीय दर्शन–चन्द्रधर शर्मा– पृ0 187।
13. भारतीय दर्शन–चन्द्रधर शर्मा– पृ0 187।
14. ईश्वरोऽयं निराकारः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्।
    अनादिरविकारी चान्यतः सर्वगतो विभुः।।
    सच्चिदानन्दरूपी दयालुर्न्याय तत्परः।
    सर्गे स्थितौ लयेहेतुः नित्यतृप्तो निराश्रयः।।

    (न्यायकुसुमांजलि–परिशिष्ट)